पुस्तक समीक्षा

डिजिटल दुनिया में बदलती अधिगम पारिस्थितिकी

ऋषभ कुमार मिश्र*

पुस्तक	:	*इंटरनेट युगः बच्चे, अभिभावक और शिक्षकों की चुनौतियाँ*
लेखक	:	*संजीव राय*
प्रकाशक	:	*राष्ट्रीय पुस्तक न्यास दरियागंज, दिल्ली*
मूल्य	:	₹ 160
संस्करण	:	*2024*

इस लेख में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'इंटरनेट युग' की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। यह पुस्तक हमारे परिवेश में सूचना एवं प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभाव तथा इसके कारण विद्यार्थियों के जीवन और शैक्षिक अनुभवों में आए बदलावों की पड़ताल करती है। इस पुस्तक में दिल्ली जैसे महानगरों में उभर चुके नए मध्यम वर्ग की आकांक्षाओं और इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों के लिए अभिभावकों एवं अन्य वयस्कों की अपेक्षाओं को भी विवेचित किया गया है। सात अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक कई प्रश्नों को संबोधित करती है, जैसे— नगरीय पारिस्थितिकी में सूचना प्रौद्योगिकी की आवश्यकता एवं आदत ने विद्यार्थियों के जीवन और शिक्षा को कैसे रूपांतरित किया है? इसका उनकी मनोसामाजिक दुनिया पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? और इससे सकारात्मक अनुकूलन में अभिभावकों और शिक्षकों की क्या भूमिका हो सकती है? इस पुस्तक का अनूठापन इस तथ्य में भी निहित है कि इसमें अभिभावकों, मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाविदों, चिकित्सकों और किशोर विद्यार्थियों के आख्यानों को सम्मिलित किया गया है। यह पुस्तक समकालीन संदर्भों को प्रस्तुत करते हुए विद्यार्थियों के मनोसामाजिक विकास के लिए अभिभावकों एवं अध्यापकों के बीच साझेदारी।

संवाद और सतत सहयोग के मॉडल को भी व्याख्यायित करती है।

हम अपने जीवन में सूचना एवं प्रौद्योगिकी संसाधनों की उपस्थिति को अपरिहार्य मान चुके हैं। यह अपरिहार्यता हमारी आवश्यकता से आरंभ होते हुए आदत में सम्मिलित हो चुकी है। यह 'आदत' वयस्कों का व्यसन मात्र नहीं है बल्कि प्रत्यक्षतः विद्यार्थियों के जीवन को प्रभावित कर रही है। इस प्रवृत्ति को केंद्र में रखते हुए लेखक ने वर्तमान दौर को 'इंटरनेट युग' की संज्ञा दी है और इसके आलोक

**सहायक आचार्य*, शिक्षा संकाय, डॉ. बी.आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली, नई दिल्ली 110094

में विद्यार्थियों के जीवन में हुए बदलावों और प्रभावों को प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में सूचना प्रौद्योगिकी के संसाधनों को नकारात्मक फ्रेम में देखने के बजाय इन्हें वृहत्तर सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक बदलावों के सापेक्ष चिह्नित किया गया है। माता-पिता का कामकाजी होना, घर पर भी कार्यालय के कार्यों को करना, बाजारोन्मुख उपभोक्तावादी संस्कृति और एकल परिवार की बढ़ती प्रवृत्ति जैसे बदलावों को हम अपने परिवार, पड़ोस और समुदाय में महसूस कर रहे हैं। इन परिस्थितियों के बीच एकाकी बचपन का लगातार विस्तार हो रहा है। बचपन के इस सिमटते दायरे के बीच अभिभावक एवं शिक्षा तंत्र की भूमिका एक महत्त्वपूर्ण सहयोगी तंत्र की है। लेखक ने इनकी भूमिकाओं को प्रत्येक अध्याय में रेखांकित भी किया है। इसके साथ ही, उन दबावों के प्रति भी सचेत किया है जो इस तंत्र के द्वारा विद्यार्थियों की मनो-सामाजिक दुनिया को प्रभावित कर रहे हैं। इस पृष्ठभूमि में लेखक ने सात अध्यायों में विषय-सामग्री को प्रस्तुत किया है।

पुस्तक के अध्याय 1, 'इक्कीसवीं सदी में विद्यार्थी' में विवेचना की गई है कि नौकरी पेशा तकनीकी संपन्न नगरीय मध्यम वर्गीय परिवारों में विद्यार्थियों का बचपन किस तरह से बदल रहा है? इस अध्याय के केंद्र में जिस मध्यम वर्ग को रखा गया है, उनमें से अधिकांश का बचपन ग्रामीण परिवेश में बीता है। इसके आलोक में लेखक ने बचपन में आए बदलावों के दो आयामों को उद्घाटित किया है। प्रथम, लेखक ने नगरीय जीवन की सामाजिक-आर्थिक प्रवृत्तियों को विवेचित किया है। लेखक ने रेखांकित किया है कि आजकल नगरीय मध्यम वर्गीय परिवारों में सहयोग और सपोर्ट सिस्टम कमजोर हो चुका है। माता-पिता दोनों घर के बाहर काम कर रहे हैं। उनके लिए परिवार और विद्यार्थियों की देखभाल करना एक बड़ी चुनौती है। उनका सामाजिक दायरा भी छोटा होता जा रहा है। मनोरंजन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मीडिया खासकर ऑनलाइन संसाधनों पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। नया उभरता मध्यम वर्ग अपने कामकाजी जीवन में इतना व्यस्त है कि परिवार को दिए जाने वाले समय की अवधि कम हुई है। ये प्रवृत्तियाँ विद्यार्थियों के दैनिक जीवन को प्रभावित कर रही हैं। इनके प्रभाव में वे ई-संसाधनों को समायोजक मान रहे हैं।

द्वितीय, लेखक ने इस अध्याय में अंतरपीढ़ी द्वंद्व को उभारने की कोशिश की है। इसके लिए लेखक ने वयस्कों के बचपन और इक्कीसवीं सदी में बचपन को संदर्भ बिंदु बनाया है। लेखक ने विस्तारपूर्वक व्याख्या की है कि वर्तमान के अभिभावकों का बचपन एक कठोर अनुशासन वाले परिवेश में बीता है, जहाँ उन्हें शिक्षा के लिए अपेक्षाकृत कम संसाधन उपलब्ध थे। ऐसे अभिभावकों को सामाजिक गतिशीलता के लिए शिक्षा से उम्मीद और समर्थन प्राप्त था। ये अभिभावक अब खुद और पाल्यों के बीच मूल्यों को लेकर असहमति देखते हैं। वे पाल्यों की इंटरनेट युक्त दिनचर्या, मेट्रोपॉलिटन जीवन शैली को लेकर आकर्षण एवं आक्रामक व्यवहार को लेकर चिंतित हैं। इस अध्याय में लेखक ने वास्तविक जीवन से उदाहरणों का चयन करते हुए विद्यार्थियों एवं किशोरों की समस्याओं एवं अभिभावकों के इनके प्रति दृष्टिकोण को भी विवेचित किया है। यह अध्याय लेखक की खोजी प्रवृत्ति को दर्शाता है। इसमें लेखक ने शोध अध्ययनों के आधार पर अपने अवलोकनों के लिए सैद्धांतिक और वैज्ञानिक तर्क

गढ़ने का प्रयास किया है। लेखक ने अभिभावकों को दोषी करार देने के बजाय उनकी सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों के बीच अभिभावकत्व की बदलती भूमिका को चिह्नित किया है।

अध्याय 2 'इंटरनेट की दुनिया' में लेखक ने विवेचना की है कि हर प्रौद्योगिकी अपने साथ सुविधा और समस्या दोनों लेकर उपस्थित होती है। आजकल हमारे परिवेश में इंटरनेट आधारित सुविधाओं की प्रचुरता ने वयस्कों और विद्यार्थियों की रोजमर्रा की आदतों में बदलाव कर दिया है। हमारी पहचान को 'रियल सेल्फ' और 'वर्चुअल सेल्फ' जैसे वर्गों में विभाजित कर दिया है। इसका प्रभाव हमारी भाषा और व्यवहार पर देखा जा सकता है। लेखक ने इस अध्याय में व्याख्या की है कि विद्यार्थी सर्वप्रथम अवलोकनकर्ता की तरह इंटरनेट की दुनिया से जुड़ते हैं। वे अपने अभिभावकों द्वारा इंटरनेट के उपयोग का अवलोकन करते हैं। धीरे-धीरे उन्हें इंटरनेट के उपयोग से प्राप्त होने वाली सुविधाओं का पता चल जाता है। वे हर छोटी से छोटी जानकारी के लिए 'सर्च इंजन' के प्रयोग के लिए उतावले होने लगते हैं। उन्हें यूट्यूब पर विडियो देखना और इंटरनेट की सहायता से विडियो गेम खेलना रूचिकर लगने लगता है।

जब यह आदत अपनी आरंभिक अवस्था में होती है तो इसे विद्यार्थियों का उत्साह, मनोरंजन और खोजी प्रवृत्ति मानकर अभिभावक तनाव नहीं लेते। यह अवस्था अधिक दिन तक नहीं टिकती। जैसे-जैसे विद्यार्थियों की संलग्नता अवधि बढ़ती जाती है, अभिभावकों का तनाव भी बढ़ने लगता है। अब विद्यार्थियों की दुनिया 'इंटरनेट की दुनिया' बदल जाती है। लेखक इस स्थिति की चुनौतियों को इस अध्याय में रेखांकित करते हैं। अधिक स्क्रीन टाइम के कारण सर्वाइकल, बेचैनी, सिरदर्द, कमरदर्द, आँखों की समस्याओं के साथ-साथ अन्य सृजनात्मक कार्यों में संलग्नता का अभाव होने लगता हैं। इसके अलावा व्यवहार और भाषा में आक्रामकता, गुस्सा और हिंसात्मक प्रवृत्तियों को भी इंटरनेट की लत से जोड़कर देखा जा सकता है। इस तरह की परिस्थिति में किताबें पढ़ना, लिखित और रचनात्मक कार्य करना और परिवार व समुदाय में समय बिताना विद्यार्थियों को अनुपयोगी लगने लगता है। इससे उनका सामाजिक-सांस्कृतिक विकास प्रभावित होता है। इस अध्याय में लेखक विद्यार्थियों की दुनिया में इंटरनेट की बढ़ती दखल के नकारात्मक प्रभाव को रोकने के लिए सुरक्षात्मक उपाय के रूप में 'अटैचमेंट पैरेंटिंग' का सुझाव भी देते हैं। इस तरह के लालन-पालन में अभिभावक विद्यार्थियों को कठोर अनुशासन द्वारा नियंत्रित न करके उनसे समस्याओं और समाधानों पर खुली चर्चा करते हैं। विद्यार्थियों को स्वअनुशासन की ओर मोड़ते हैं। सतत संवाद द्वारा उन्हें सहायता प्रदान करते हैं।

अध्याय 3 में लेखक ने अभिभावकों की अपेक्षाओं को विश्लेषण के केंद्र में रखा है। लेखक ने नए उभरते भारतीय मध्यम वर्ग के संदर्भ में व्याख्या की है कि यह वर्ग अपने विद्यार्थियों को अपने से अधिक सफल देखने की आकांक्षा में अपने विद्यार्थियों के लिए एक दबावयुक्त परिवेश रचता है। यह परिवेश विद्यार्थियों के लिए कितना घातक होता है, इस पर चर्चा करते हुए लेखक प्रतियोगी परीक्षाओं में असफलता के कारण होने वाली

आत्महत्या का उदाहरण प्रस्तुत किया है। लेखक का सुझाव है कि अभिभावक अपनी आकांक्षाओं को अपेक्षाओं में न बदले इसलिए वह वास्तविक घटनाओं के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों उदाहरणों को प्रस्तुत करता है। लेखक रेखांकित करता है कि विद्यार्थियों के स्वाभाविक विकास मार्ग को अभिभावक अपनी अपेक्षाओं से कृत्रिम बना देते हैं। विद्यालय इस कृत्रिमता को बढ़ावा देने का कार्य करता है। अंततः विद्यार्थी अपनी रूचि और प्रतिभा को पोषित करने के स्थान पर दूसरों की अपेक्षाओं को ढोने लगते हैं। इस प्रवृत्ति से बचाव हेतु लेखक शोध अध्ययनों के आलोक में सुझाव प्रस्तुत करता है कि अभिभावकों और अन्य महत्त्वपूर्ण वयस्कों को विद्यार्थियों से असाधारण प्रदर्शन की उम्मीद करने के बजाय उनके साधारण कार्यों की सराहना करनी चाहिए। विद्यार्थियों की परस्पर तुलना करने के बजाय उनकी अनूठी क्षमता के बारे में बात करनी चाहिए। उन्हें किसी एक अंतिम रास्ते या एक विकल्प के लिए अभिप्रेरित न करके संभावनाओं और विकल्पों की दुनिया से परिचित कराना चाहिए। इस तरह से यह अध्याय विद्यार्थियों की रूचि, क्षमता और पसंद को प्राथमिकता देते हुए उनके विकास की स्वाभविकता को पोषित करने की पैरवी करता है।

अध्याय 4, 'जागरूकता की ज़रूरत', में लेखक ने विद्यार्थियों के प्रति बढ़ते यौन अपराध को विश्लेषण के केंद्र में रखा है। लेखक ने विद्यार्थियों के प्रति बढ़ते यौन अपराध का मात्रात्मक विवरण प्रस्तुत करते हुए इसके निषेध हेतु 'जागरूकता' को विकल्प माना है। लेखक ने विवेचना की है कि हमें परिवार के स्तर पर विद्यार्थियों को सिखाना होगा कि वे अपने शरीर के मालिक स्वयं हैं। उन्हें बताना होगा कि किसी भी हमउम्र साथी या वयस्क द्वारा शरीर को जबरदस्ती छूने पर उसका प्रतिरोध करना चाहिए। विद्यार्थियों के साथ बातचीत के दौरान शरीर के अंगों के लिए उचित शब्दों का प्रयोग करना होगा। लेखक ने यह भी व्याख्या की है कि इस तरह की समस्याएँ पैदा न हो इसके लिए अभिभावकों और शिक्षकों को मिलकर कार्य करना होगा। पेरेंट्स टीचर मीटिंग (पी.टी.एम.) जैसे संवादात्मक अवसरों पर केवल विद्यार्थियों की उपलब्धि की चर्चा तक सीमित न रखा जाए, बल्कि विद्यालय और परिवार के परिवेश, इन परिवेशों में विद्यार्थियों की गतिविधियों, विद्यार्थियों के हमउम्र साथियों के साथ संबंध, मनो-सामाजिक व्यवहारों पर भी चर्चा की जाए।

अध्याय 5 'असमंजस में अभिभावक' विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने में अभिभावकों की भूमिका से संबंधित है। इस अध्याय के प्रथम खंड में लेखक ने अभिभावकों को विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के खतरों के प्रति सचेत किया है। लेखक ने मानसिक स्वास्थ्य की अस्थिरता के लक्षणों, जैसे— छोटी-छोटी बातों पर गुस्सा करना, चिल्लाना, अवसाद एवं निराशा की भावना और सामाजिक उदासीनता की चर्चा की है। तदन्तर लेखक ने विवेचना की है कि अभिभावक विद्यार्थियों की सामाजिक व भावनात्मक सुरक्षा का सबसे बड़ा कवच होते हैं। उन्हें अपने पाल्यों के साथ विश्वासपूर्ण रिश्ता विकसित करना चाहिए। उन्हें पाल्यों को ई-संसाधन आधारित मनोरंजन के इतर अन्य रचनात्मक कार्यों में संलग्नता का अवसर उपलब्ध कराना चाहिए। उन्हें कठोर अनुशासन

के बजाय स्व-अनुशासन पर बल देना चाहिए। इन सुझावों को लेखक ने मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाविदों और चिकित्सकों के आख्यानों से पुष्ट किया हैं। इस कारण ये सुझाव जाँचे-परखे एवं उपयोगी प्रतीत होते हैं।

इस अध्याय में लेखक ने 'सुपरकिड सिंड्रोम' की व्याख्या की है। इसके अनुसार अभिभावक अपने विद्यार्थियों को शिक्षा, खेल एवं कला के क्षेत्र में अत्यंत प्रतिभाशाली सिद्ध करने के लिए परस्पर होड़ में लगे रहते हैं। अभिभावक अपने विद्यार्थियों पर सफलता के लिए आवश्यकता से अधिक दबाव भी बनाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे अपनी औसत उपलब्धि स्तर को बनाए रखने के लिए भी संघर्ष करने लगते हैं। लेखक का सुझाव यह है कि अभिभावकों को अपने विद्यार्थियों की अद्वितीय क्षमताओं को स्वीकार करने के साथ उन्हें भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करना चाहिए। इससे विद्यार्थियों में स्वतः सामर्थ्य पैदा होता है कि वे असफलता की स्थिति में अपना धैर्य और मानसिक संतुलन बनाए रखें।

अध्याय 6, 'कहाँ गया समय' में लेखक ने सूचनाओं की प्रचुरता के बीच तार्किकता के लोप होने की समस्या को उठाया है। लेखक ने विवेचना की है कि सूचना प्रौद्योगिकी के संसाधन हमें सूचनाओं के जाल में उलझा रहे हैं। हम सोशल मीडिया के माध्यम से विरोधाभासी, मिथ्या और अपुष्ट सूचनाओं के उपभोक्ता बन रहे हैं। इस परिस्थिति में बिना तार्किक विश्लेषण के सत्य मान लेने की प्रवृत्ति मिथ्या प्रचार का साधन बन रही है। लेखक मीडिया निर्भरता सिद्धांत का संदर्भ लेते हुए चिंता प्रकट करते हैं कि हम तार्किक कसौटियों पर सूचनाओं का आकलन करने के बजाय उन्हें सत्य मानने और उसके आधार पर निर्णय लेने की ओर बढ़ते जा रहे हैं। तदन्तर लेखक का मानना है कि प्रतिदिन सूचनाओं को इकट्ठा करने और उनके साथ समय बिताने से जीवन की आवश्यक चीज छूट जाती हैं। इसके आलोक में लेखक का सुझाव है कि हमें ध्यान रखना होगा की सूचना प्रौद्योगिकी के साधन हमारी सुविधा के लिए हैं। हमें उनके अति उपयोग की आदत से बचना होगा। इसके लिए हमें वयस्कों को अपनी प्राथमिकताएँ तय करनी होंगी। उन्हें उनकी दिनचर्या का मूल्यांकन करते हुए सूचना प्रौद्योगिकी के संसाधनों के गैर उत्पादक उपभोग को न्यूनतम करना होगा। हमें विद्यार्थियों और परिवार के साथ संवाद करने, उनके साथ मिलकर रचनात्मक कार्यों को करने, सामुदायिक भ्रमण जैसे परंपरागत संलग्नताओं के महत्त्व को स्वीकारना होगा।

अध्याय 7 में लेखक ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की संस्कृतियों के आलोक में सूचना प्रौद्योगिकी की भावी भूमिका पर विचार किया है। इस अध्याय में लेखक की आधारभूत स्थापना है कि शिक्षा का परंपरागत ढाँचा बदल चुका है। ऑनलाइन लर्निंग के प्रभाव और विस्तार को हमें वर्तमान की आवश्यकता मानकर इसके सहयोग से बेहतर शिक्षा के प्रसार का प्रयास करना चाहिए। लेखक ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था को परिपक्व करने के लिए शिक्षा की उक्त नई संरचना को स्वीकार करने की पैरवी करता है। इसके समानांतर लेखक संसाधन आधार के विस्तार और संसाधन पहुँच की सीमाओं को भी रेखांकित किया है। लेखक ने यह विवेचना की है कि वर्तमान में शिक्षकों की सूचना तकनीकी से तालमेल बैठाने की असमर्थता और अन्यमनस्कता

की समस्या को प्राथमिकता के आधार पर हल करने की आवश्यकता है।

वर्तमान संदर्भ में ऑनलाइन शिक्षा की प्रासंगिकता को उभारने के बाद यह अध्याय ऑनलाइन लर्निंग के नए आभासी माध्यमों जैसे मैसिव ओपन ऑनलाइन कॉर्स के औचित्य पर विस्तारपूर्वक चर्चा करता है। लेखक ने इस हेतु भारत सरकार के प्रयासों की सराहना की है। इस प्रयास की गति और प्रभाव के विस्तार हेतु शिक्षकों के प्रशिक्षण और भारतीय भाषाओं में ई-सामग्री की उपलब्धता पर बल दिया है। इस अध्याय का अंतिम खंड कृत्रिम मेधा और शिक्षा के संबंधों पर चर्चा करता है। इसे लेखक ने भविष्य की शिक्षा क्रांति का माध्यम माना है। लेखक का विचार है कि ऑनलाइन शिक्षा की उपस्थिति के कारण विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक अधिगम और आकलन के अभ्यास बदल रहे हैं। परिवर्तन के इस दौर में विद्यार्थियों को जीवन पर्यंत अधिगमकर्ता मानते हुए सस्ती और बेहतर शिक्षा को भौगोलिक सीमाओं के दायरे से परे सर्वसुलभ बनाना होगा।

सरल एवं प्रवाहमय भाषा में लिखी गई इस पुस्तक में लेखक ने इस बात का ध्यान रखा है कि उसके द्वारा दिए गए सुझाव निजी मंतव्य न लगकर अनुभाविक दुनिया की वास्तविक घटनाओं के साथ प्रस्तुत हों। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लेखक ने पुस्तक में विशेषज्ञों के साथ साक्षात्कारों को भी सम्मिलित किया है। लेखक स्वयं एक शिक्षाविद् अभिभावक और सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों के उपयोगकर्ता की भूमिका में प्रत्येक अध्याय में उपस्थित हैं। ग्राम्य संस्कृति से निकलकर आया वयस्क नगरीय दुनिया के बीच अपने विद्यार्थियों के भविष्य को कैसे देखता है? विद्यार्थियों की आदतों एवं व्यवहारों के लिए उसकी क्या दृष्टि है? मेट्रोपॉलिटन संस्कृति के प्रभाव को वह शिक्षा के समानांतर कैसे आकलित करता है? जैसे प्रश्नों ने इस पुस्तक के ताने-बाने को बाँध रखा है।

इस पुस्तक में लेखक ने इंटरनेट संसाधनों के बचपन और शिक्षा पर प्रभाव से जुड़े जिन विमर्शों और प्रश्नों को उठाया है, ये हमारे चारों तरफ उपस्थित हैं। ये हमारे आज के समय की सच्चाई हैं। हम इनसे भाग नहीं सकते, बल्कि इनसे जुड़े प्रश्नों के उत्तरों को खोजने का प्रयास कर सकते हैं। इस दिशा में अभिभावकों और शिक्षा-तंत्र दोनों को मिलकर कार्य करना होगा। हमें ऑनलाइन शिक्षा को एकमात्र विकल्प न मानकर अनेक नवाचार आधारित प्रयोगों में से एक मानना होगा। हमारे लिए विद्यार्थियों का सांस्कृतिक संदर्भ और उसमें इन संसाधनों की उपस्थिति के घटकों को भी संज्ञान में लेना होगा। यह पुस्तक अभिभावकों और शिक्षकों को आमंत्रित करती है कि वे स्वयं और अपने पाल्यों की आभासी दुनिया में संलग्नता पर चिंतन-मनन कर उचित मार्गदर्शन दें। वे अपनी सहूलियत, आवश्यकता और कार्य दबाव के नाम पर सूचना प्रौद्योगिकी के अंधाधुंध प्रयोग को वैध न बनाए, बल्कि परिवार और विद्यार्थियों के साथ रचनात्मक संलग्नता के अन्य माध्यमों पर भी विचार करें। यह पुस्तक राष्ट्रीय शिक्षा नीति को भावी शिक्षा के लिए उपयोगी मानती है। पुस्तक के केंद्रीय कथ्य के अनुरूप इसकी संस्तुति है कि इंटरनेट आधारित संसाधन सस्ती और बेहतर शिक्षा को भौगोलिक सीमाओं के परे सर्वसुलभ करने में उपयोगी हैं।